बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 115

अच्छा और बुरा

ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो देश के बैंकों ने आखिरकार फंसे हुए कर्ज की समस्या पर लगाम लगा ली है। फंसे हुए कर्ज का चक्र मार्च 2018 में उच्चतम स्तर पर पहुंचा। ऐसा भारतीय रिजर्व बैंक की चार वर्षों की उस अथक मेहनत के कारण हुआ जो उसने फंसे हुए कर्ज को चिह्नित करने में की। आरबीआई की वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट के अनुसार अधिकांश ऐसी परिसंपत्ति के चिह्नित हो जाने के कारण सकल एनपीए अनुपात मार्च 2019 में गिरकर 9.3 फीसदी हो गया और मार्च 2020 तक इसके 9 फीसदी हो जाने का अनुमान है। सरकारी बैंकों के सकल एनपीए अनुपात में भी गिरावट आ सकती है और यह मार्च 2019 के 12.6 फीसदी से गिरकर मार्च 2020 तक 12 फीसदी हो सकता है। वहीं निजी क्षेत्र के बैंकों का सकल एनपीए अनुपात 3.7 फीसदी से सुधरकर 3.2 फीसदी हो सकता है।

इन सभी बैंकों का प्रोविजन कवरेज रेशियो (पीसीआर) तेजी से बढ़ता हुआ मार्च 2019 में 60.6 प्रतिशत हो गया। इससे पहले सितंबर 2018 में यह 52.4 फीसदी जबकि मार्च 2018 में 48.3 फीसदी था। इससे बैंकिंग क्षेत्र में मजबूती आई है। रिकग्निशन, रिजॉल्युशन और रिकवरी के तीन 'आर' में से पहला आर हकीकत में बदल चुका है। अब इसका अधिक कठिनाई भरा हिस्सा बकाया है। अच्छी खबर यह है कि ऋणशोधन अक्षमता एवं दिवालिया संहिता (आईबीसी) एक मजबूत नियमन है, हालांकि कुछ मामलों में निस्तारण अदालती चक्कर में उलझा हुआ है। आरबीआई के जून 2019 में जारी तनावग्रस्त परिसंपत्ति से संबंधित संशोधित खाके के अनुसार बैंकों के लिए ऋणशोधन के आवेदन में देरी करने पर उनका नुकसान होना है। दिलचस्प बात है कि केंद्रीय बैंक ने व्यवस्थित जोखिम संबंधी सर्वेक्षण में पाया कि प्रतिक्रिया देने वालों में से आधे यह मानते हैं कि अगले एक वर्ष में भारतीय बैंकिंग क्षेत्र की संभावनाओं में कुछ सुधार होगा। इसमें आईबीसी की प्रक्रिया के तहत आई स्थिरीकरण का भी योगदान रहेगा। रिपोर्ट के मुताबिक इससे घरेलू वित्तीय क्षेत्र में विश्वास भी बहाल होगा।

बहरहाल, बैंकों के लिए यह समझना आवश्यक है कि वे अब पुराने तौर तरीकों से काम नहीं करते रह सकते। वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट यह भी कहती है कि अगर सरकार ने अतिरिक्त पूंजी नहीं दी तो अगले वर्ष तक कम से कम पांच बैंक न्यूनतम पूंजी पर्याप्तता के नियामकीय स्तर से नीचे रहेंगे। चाहे जो भी हो लेकिन बैंकों का पुनर्पूंजीकरण एक अस्थायी उपाय भर है जबकि स्थायी निदान होगा इन कमजोर बैंकों का बड़े बैंकों में विलय करना ताकि उनका बेहतर और किफायती ढंग से प्रबंधन किया जा सके।

बड़ी समस्या है गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों की सेहत। इस क्षेत्र का सकल एनपीए अनुपात 2017-18 के 5.8 फीसदी से बढ़कर 2018-19 में 6.6 फीसदी हो गया। जबकि पूंजी पर्याप्तता अनुपात मार्च 2018 के 22.8 फीसदी से घटकर 19.3 फीसदी रह गया। सबसे बढ़कर कुछ गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियां देनदारी चूक रही हैं या अपने भुगतान दायित्वों का निबाह नहीं कर पा रही हैं। केंद्रीय बैंक के विश्लेषण के मुताबिक अगर सबसे बड़ी आवास वित्त कंपनी विफल होती है तो बैंकिंग व्यवस्था की पहली श्रेणी की पूंजी का करीब 5.8 फीसदी खत्म हो जाएगा। आरबीआई ने यह कहकर उत्साह पैदा करने की कोशिश की कि इस क्षेत्र को कड़े बाजार अनुशासन के अधीन किया गया क्योंकि बेहतर प्रदर्शन करने वाली कंपनियों का फंड बढ़ता रहा। जबकि जिन कंपनियों की परिसंपत्ति गुणवत्ता पर सवाल थे उनके ऋण की लागत बढ़ी। परंतु केवल इतना पर्याप्त नहीं था, नियामक को भविष्य में संक्रमण के जोखिमों से बचने के लिए अग्रगामी कदमों पर विचार करने की आवश्यकता है।

अजय मोहंती

शत्रु और मित्र दोनों की दृष्टि में अजेय हैं मोदी

मोदी भक्त मानते हैं कि उन्होंने लोक कल्याण और राष्ट्रीय सुरक्षा को लेकर उन्माद की हद तक पहुंचे लगाव और एक व्यक्ति के प्रभाव जैसे कांग्रेस के हथियारों का इस्तेमाल करके ही उसे पराजित कर दिया है।

राष्ट्र की बात

शेखर गुप्ता

ऐसे समय में जब ध्रुवीकरण इतना बढ़ गया है कि हम अपनी क्रिकेट टीम की जर्सी के रंग को लेकर भी झगड़ने लगे हैं, एक बात ऐसी है जिस पर मोदी के प्रशंसक और आलोचक दोनों एकमत हैं: यह कि मोदी अपराजेय हैं। न केवल अभी बल्कि निकट भविष्य में भी वह पराजित होते नहीं दिखते। सबसे पहले बात करते हैं भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के वफादारों की। उनको लगता है कि कम से कम अगले 25 वर्ष तक उनको सत्ता से हटाना संभव नहीं। काफी हद तक यह कांग्रेस के सन 1952 से 1989 तक के शासनकाल के समान होगा जो केवल सन 1977 और 1979 में थोड़े समय के लिए सत्ता से हटी थी। उनका कहना है कि यह एकदम उचित है क्योंकि राष्ट्रवादी दक्षिणपंथियों को भी देश में उसी तरह आकार में ढालने का हक है जैसे धर्मनिरपेक्ष वाम ने आजादी के बाद किया।

पांच वर्षों में वे दिखा भी चुके हैं कि पुराना सामाजिक-राजनीतिक ढांचा कितना कमजोर था, खासतौर पर धर्मनिरपेक्षता। यह भी कि समाजवाद और कल्याणकारी राजनीति को मध्य-वाम से परे ले जाकर कहीं बेहतर क्रियान्वयन किया जा सकता है और उन्हें अधिक प्रभावी तरीके से वोट में बदला जा सकता है। शैक्षणिक और बौद्धिक जगत में वैचारिक और दार्शनिक प्रकृति में बदलाव की योजना बखूबी काम कर रही है।

उन्हें यकीन है कि बार-बार बहुमत हासिल कर वे 2025 तक यानी मोदी के तीसरे कार्यकाल के आरंभ तक अपनी विचारधारा से जुड़े अधिकांश लक्ष्यों को हासिल कर लेंगे। उनका मानना है कि देश को हिंदू राष्ट्र की अपनी अवधारणा के मुताबिक बदलने का लक्ष्य अगले छह वर्ष में हासिल किया जा सकता है। यह काम इसी संविधान के दायरे में रहकर किया जा सकता है। वह वर्ष आरएसएस की स्थापना का शताब्दी वर्ष भी है। मोदी के वफादारों को लगता है कि उन्होंने देश के गरीबों के साथ वैसा ही सामाजिक रिश्ता कायम कर लिया है जैसा जवाहरलाल नेहरू या इंदिरा गांधी ने किया था। उन्हें लगता है कि उन्होंने कांग्रेस को हिंदू राष्ट्रवाद के जरिये नहीं बल्कि कांग्रेस के पुराने लोककल्याणवाद, राष्ट्रीय सुरक्षा को लेकर उपजे जुनून और मोदी के व्यक्तित्व के करिश्मे की बदौलत ध्वस्त किया है। उन्हें लगता है कि इस सामाजिक रिश्ते ने मोदी को अपराजेय बनाया है। अच्छी से अच्छी सेना भी युद्ध हार सकती है लेकिन उनकी जितनी परीक्षा जबरदस्त जीत में होती है, उतनी ही व्यवस्थित वापसी में भी होती है। कांग्रेस के नेतृत्व में विपक्ष उसी तरह आत्मघात की स्थिति में है जैसे सन 1962 में कायर जनरलों के नेतृत्व में हमारी सेना ने मैदान छोड़ा था। मतदाताओं के प्रति विपक्ष की झूठी नाराजगी इसका चरित्र उजागर कर रही है। कांग्रेस का मानना है कि मोदी जीत गए लेकिन भारत हार गया है। प्रधानमंत्री ने बीते दिनों संसद में इसका उल्लेख करते हुए विपक्ष पर तंज कसा। कांग्रेस के सहयोगियों तथा अन्य दलों का हाल और बुरा है। उदाहरण के लिए रोजगार की तलाश करने वालों पर कर्नाटक के मुख्यमंत्री एच डी कुमारस्वामी की नाराजगी जिसमें उन्होंने कहा था कि आपने मोदी को वोट दिया है, मोदी से रोजगार मांगिए। या मायावती का हार के लिए अपने सहयोगी अखिलेश यादव को दोष देना। ममता बनर्जी भी पीछे नहीं हैं। पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री का भाजपा के खिलाफ साझा मोर्चे में कांग्रेस और वाम दलों को आमंत्रित करना नैतिक दिवालियापन दर्शाता है। यह आह्वान राजनीतिक और चुनावी दृष्टि से भी सही नहीं है। इससे यही संदेश जाता है मानो ममता आगामी विधानसभा चुनाव में पहले ही हार मान चुकी हैं। अन्य जिनमें वाम से लेकर नवीन पटनायक, जगनमोहन रेड्डी, केसीआर और स्टालिन तक शामिल हैं, किसी गिनती में ही नहीं हैं। विपक्ष की दलील आकर्षक है कि संसाधनों के मामले में 95:5 की बढ़त बनाने, संस्थानों पर नियंत्रण, संस्थानों पर नियंत्रण और समर्थक मीडिया की बदौलत मोदी अजेय हुए हैं। उनका कहना है कि अगर जनता निर्वाचित तानाशाही पसंद करती है तो क्या कर सकते हैं?

ऐतिहासिक रूप से देखे तो राजीव गांधी के बाद कांग्रेस का यही रवैया था। लोगों द्वारा नकारे जाने पर पार्टी कभी उनसे यह जानने की कोशिश भी नहीं करती थी कि उसे क्यों नकारा गया? बतौर चुनाव विश्लेषक योगेंद्र यादव एक दिलचस्प निष्कर्ष देते हैं: अगर किसी प्रदेश में कांग्रेस का मत प्रतिशत 20 फीसदी से अधिक गिर जाता है तो वह कभी वापसी नहीं कर पाती। वह मानो जनता की मूर्खता से नाराज होकर मान लेती है कि जनता ही उसके लायक नहीं है। राहुल गांधी कभी अपने गढ़ रहे अमेठी में हार के पांच सप्ताह बाद भी वहां नहीं गए हैं, इसे इस उदाहरण से समझा जा सकता है। अगर आपने मान लिया हो कि मोदी अजेय हैं, तभी आप ऐसी उपेक्षा कर सकते हैं। ऐसे में बेहतर होगा कि मोदी विरोध का काम उदारवादी कार्यकर्ताओं, बौद्धिकों और जनहित याचिका लगाने वालों पर छोड़ दिया जाए। ऐसे में राजनैतिक बदलाव लाने की चुनौती अधकचरे प्रतिरोध में तब्दील हो जाती है।

अगर मोदी समर्थक और विरोधी दोनों सही हैं और वह पूरी तरह अजेय हैं तो पहला असर हम राजनीतिक टीकाकारों पर पड़ेगा। सच तो यह है कि राजनीति में कुछ भी स्थायी नहीं होता। यहां चीजें लौट कर आती हैं, भले ही पहिया घूमने में थोड़ा ज्यादा वक्त लग जाए। नेहरू-गांधी परिवार के साथ ऐसा हो चुका है। लोकतांत्रिक देशों का इतिहास ऐसे आत्मघाती उदाहरणों से भरा पड़ा है जहां बहुत जल्दी जीत या हार की घोषणा कर दी जाती है। तमाम ऐसे भी लोग हैं जिन्होंने समर्पण नहीं किया, झटका सहा और दोबारा उठ खड़े हुए। आपातकाल के बाद की कांग्रेस और आडवाणी-वाजपेयी की भाजपा इसका सटीक उदाहरण है। इंदिरा गांधी ने ढाई वर्ष में वापसी की। वह जेल भी गईं और बेलछी में हाथी की सवारी के साथ वापस लौटीं। जब उन्हें जनता सरकार की कमजोरी, खासकर राष्ट्रीय सुरक्षा के क्षेत्र में कमजोरी का अहसास हुआ तो उन्होंने हमला किया और सफल रहीं। सन 1980 में जनता पार्टी (जिसमें जनसंघ शामिल था) बिखर गई और इंदिरा गांधी ने जोरदार जीत हासिल की। परंतु वाजपेयी-आडवाणी की जोड़ी ने अपने पराजित सैनिकों को जुटाकर भाजपा के रूप में नई पार्टी बनाई। चार वर्ष के भीतर उसे तब झटका लगा जब 1984 की कांग्रेस लहर में पार्टी दो सांसदों तक सिमट गई। सारे विपक्ष का यही हाल था। वे हताश नहीं हुए। उन्होंने कमजोरियों का आकलन किया और प्रतिबद्धता से डटे रहे। याद रहे उस वक्त राजीव ने 414 सीटों पर जीत हासिल की थी। मोदी तो आज भी 303 ही जीत पाए हैं।

तीन वर्ष के भीतर उसी पराजित विपक्ष ने राजीव गांधी की हालत खराब कर दी। उनकी गलतियों ने विपक्ष की मदद की लेकिन भाजपा ने संसद में और सड़क पर कड़ी मेहनत की। उसने कांग्रेस के असंतुष्टों को साथ लिया और उन विपक्षी नेताओं को भी जिनसे वह मुकाबिल थी। वह मीडिया और सामाजिक कार्यकर्ताओं के साथ बोफोर्स समेत तमाम घोटाले सामने लाए।

भाजपा सन 1998 में सत्ता में आ सकी क्योंकि उसके पास राम मंदिर और नव हिंदुत्व के रूप में ऐसा मुद्दा था जिसकी काट कांग्रेस और समाजवादियों के पास नहीं थी। भले ही आपको रास न आए लेकिन एक वैकल्पिक विचार की आवश्यकता थी। 35 वर्ष लगे लेकिन आज भाजपा का उतना ही दबदबा है जितना एक दौर में कांग्रेस का था।

राजनीतिक हार या जीत से सबक सीखने का सबसे अच्छा तरीका है अपने ही वक्त के प्रमाणों पर गौर करना। मोदी अपराजेय भले नजर आ रहे हों लेकिन वह इंसान ही हैं। वह कोई अवतार नहीं हैं। 2014 की जीत के कुछ महीनों के अंदर अरविंद केजरीवाल ने दिल्ली में उनकी पार्टी को 67-3 से हराया था। उस वक्त आप एक नया और बड़ा विचार था। यह क्रिकेट का मौसम है और मैं मोदी को लेकर असदुद्दीन ओवैसी की शानदार टिप्पणी पेश करूंगा: 'वह विवियन रिचर्ड की तरह संसद में प्रवेश करते हैं, गेंदबाजों के प्रति अवमानना से भरपूर। परंतु इंगलैंड ने समस्या का हल खोज निकाला। उसने दूर-दूर फील्डर खड़े कर एक रक्षात्मक फील्डिंग जमाई ताकि वे बल्ला घुमाते और शॉट लगाते हुए बोर हो जाएं और गलती करें।' धैर्य, अपना बचाव और सामने वाले की गलती का इंतजार। यह भी एक रणनीति है। मगर शर्त यह है कि बुद्धिमता से कहीं ज्यादा साहस दिखाएं और मजबूत बने रहें।

भारत और चीन के बीच अंतर पाटना है मुश्किल

जिंदगीनामा

कनिका दत्ता

यदि उभरते बाजारों में आने वाले प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए और विश्व बैंक के विभिन्न कारोबारी माहौल सूचकांकों पर दृष्टि डाली जाए तो निवेश के वांछित ठिकाने के रूप में भारत के कमजोर प्रदर्शन का अंदाजा लग जाता है। इसके पीछे कई वजह गिनाई जाती हैं। मसलन लालफीताशाही, भ्रष्टाचार, नीतिगत अनिश्चितता, अपर्याप्त व्यक्तिगत सुरक्षा वगैरह। परंतु भारत में रहने और काम करने वाले कारोबारी और संभावित निवेशक हमें कैसे देखते हैं? अमेरिका और चीन के बीच छिड़े कारोबारी युद्ध के कारण यदि विनिर्माता कोई नया ठिकाना तलाशते हैं तो क्या भारत दुनिया की नई फैक्टरी बन सकता है? भारत के आकार को देखते हुए कहा जा रहा है कि भारत आदर्श रूप से इसका लाभ उठाने की स्थिति में है। परंतु इसके बजाय हमारा प्रदर्शन अपेक्षाकृत छोटे एशियाई देशों की तुलना में भी कमजोर है। अमेरिका के राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप द्वारा व्यापार युद्ध की शुरुआत के बाद जनवरी में चीन के एक आपूर्ति शृंखला सलाहकार ने वैकल्पिक निवेश केंद्र के रूप में भारत और वियतनाम की संभावनाओं पर विचार करते हुए एक लेख लिखा था जिसका शीर्षक था, 'इंडिया ऑर वियतनाम: हू इज द न्यू चाइना?' लेखक ने कॉर्पोरेट शैली के बिंदुवार लेख में निष्कर्ष दिया था कि वियतनाम भारत की तुलना में अधिक वांछनीय है। गौरतलब है कि वियतनाम की अर्थव्यवस्था का आकार भारतीय अर्थव्यवस्था के 10वें हिस्से के बराबर है। लेखक ने यहां तक लिखा कि निकट भविष्य में भारत के अगला चीन बनने की कोई संभावना नहीं है। जानकारी के मुताबिक वाणिज्य मंत्रालय कर छूट समेत तमाम योजनाएं बना रही है ताकि कारोबारी युद्ध से परेशान कंपनियों और निवेशकों को भारत की ओर मोड़ा जा सके। ऐसे में यह आकलन विवेक सम्मत है। इस आलेख में सबसे बड़ा खुलासा यह था कि वियतनाम की तुलनात्मक श्रेष्ठता उस पारंपरिक मान्यता के कारण नहीं है जिसके तहत माना जाता रहा है कि श्रम की लागत पारंपरिक सफलता हासिल करने में अहम है। इसके विपरीत वियतनाम ने वर्ष 2015 में ही विनिर्माण क्षेत्र की औसत वेतन दर के मामले में भारत पर बढ़त कायम करनी शुरू कर दी थी। वियतनाम के भारत पर बढ़त बनाने के पीछे दो अहम वजह हैं: बुनियादी शिक्षा का स्तर और महिला कर्मचारियों का अनुपात। वियतनाम के जीवंत और पुरातन शहरों को भारत के भीड़भाड़ और शोरगुल वाले शहरों की तुलना में बेहतर माना जा सकता है। वहां सुव्यवस्थित और बेहतर प्रबंधन वाले सरकारी स्कूल हैं। वियतनाम में 2001 में ही अनिवार्य शिक्षा का कानून लागू कर दिया गया था, भारत के शिक्षा का अधिकार अधिनियम से आठ वर्ष पहले। ऐसे वक्त पर जबकि हमारे देश का सत्ताधारी प्रतिष्ठान हिंदी को इकलौती राष्ट्रभाषा बनाने को प्रतिबद्ध नजर आ रहा है, वियतनाम प्राथमिक विदेशी भाषा के रूप में अंग्रेजी पढ़ाता है जबकि चीनी भाषा, चार द्वितीयक भाषाओं में शामिल है। दूसरे शब्दों में औसत युवा वियतनामी अमेरिका और चीन दोनों देशों के निवेशकों से बातचीत कर सकता है। देश के शैक्षणिक पाठ्यक्रम में अंग्रेजी के घटते कद के संदर्भ में भारत की बहुचर्चित विविधतापूर्ण संस्कृति को लेकर लेखक की राय को उद्धृत करना उचित होगा, 'भारत के विभिन्न राज्यों में अलग-अलग भाषा बोलने वाले लोग रहते हैं। उनकी भाषा और संस्कृति अलग होने से कारोबारी प्रबंधन एक सरदर्द बन जाता है, इतना ही नहीं 14 आधिकारिक भारतीय भाषाएं (वास्तव में 22) होने के कारण भारतीयों के लिए अलग-अलग राज्यों में संवाद करना काफी मुश्किल है। अगर वे अंग्रेजी नहीं बोलते हैं तो इस बात की संभावना बहुत कम है कि वे एक दूसरे को समझने का तरीका तलाश पाएंगे।'

जहां तक श्रम शक्ति में महिलाओं की भागीदारी की बात है, लेखक ने यह नहीं बताया कि किसी निवेशक के निर्णय में यह इतना अहम कारक क्यों है? शायद महिलाओं की अधिक भागीदारी चीन की शैली में बनने वाली विशालकाय फैक्टरियों को बड़ी तादाद में श्रमिक उपलब्ध कराती हों या शायद वे इसे प्रगतिशीलता की निशानी मानते हों। अर्थशास्त्रियों के पास भारत की श्रमशक्ति में महिलाओं की कम भागीदारी की कोई वजह नहीं है लेकिन लेखक इसके लिए परंपरा को वजह मानते हुए कहता है कि उच्च शिक्षा और बढ़िया रोजगारी वाली महिलाएं भी परंपरा के चलते पूर्णकालिक गृहिणी बन जाती हैं।

वियतनाम और चीन दोनों देशों की श्रमशक्ति में महिलाओं की जबरदस्त भागीदारी है। वियतनाम में 73.21 फीसदी के साथ यह सराहनीय स्तर पर है तो चीन 60.87 फीसदी पर है। भारत में 2005 में जहां यह 36.7 फीसदी था वहीं 2018 में घटकर 26 फीसदी रह गया है। ऐसे में बहुत अधिक भरोसा कायम होता नहीं दिखता। वियतनाम साफ तौर पर होड़ में आगे है। 2019 की पहली तिमाही में वियतनाम में विदेशी निवेश 86.2 फीसदी बढ़कर 10.8 अरब डॉलर हो गया। चीनी निवेश इसके आधा रहा। फॉक्सकॉम को जहां भारत में ऐपल आईफोन की असेंबली यूनिट स्थापित करने के लिए चार वर्ष संघर्ष करना पड़ा वहीं इंटेल, सैमसंग और एलजी ने एक ऐसे देश में जमकर निवेश किया जो 30 वर्ष तक युद्ध में उलझा रहा और जहां 30 लाख लोगों की जान गई।

अब निवेशक उसी छोटे से देश में निवेश कर रहे हैं। वियतनाम के पास इस निवेश को संभालने की सीमित क्षमता है। आर्थिक वृद्धि के तमाम अवांछित पहलू सामने आने लगे हैं: शहरी ट्रैफिक जाम, अचल संपत्ति की बढ़ती कीमतें, चीन की तुलना में कम कुशल कामगार, बंदरगाहों पर गतिरोध और श्रमिकों की कमी आदि।

क्या यहां भारत के लिए अवसर है? अवसर होना चाहिए लेकिन निवेशक भारत के बजाय इंडोनेशिया के बाटम द्वीप का रुख कर रहे हैं। वह एक मुक्त व्यापार क्षेत्र है जो इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड और सिंगापुर को जोड़ता है। फिलहाल वह सबके आकर्षण का केंद्र बना हुआ है।

कानाफूसी

इस्तीफा और सक्रियता

लोकसभा चुनाव में पार्टी के कमजोर प्रदर्शन के बाद कांग्रेस के राष्ट्रीय अध्यक्ष राहुल गांधी ने भले ही अपने पद से इस्तीफा देने की घोषणा कर दी हो लेकिन पार्टी पर इसका कोई असर नहीं हुआ है और वह अपने सभी जरूरी कामों को पूर्व निर्धारित ढंग से, भलीभांति पूरा कर रही है। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश में पार्टी ने न केवल हालिया लोकसभा में पार्टी प्रत्याशियों द्वारा उसे पहुंचाए गए नुकसान का आकलन करने के लिए तीन सदस्यीय समिति का गठन किया है बल्कि उसने आगामी विधानसभा चुनावों में ऐसी समस्या से बचने के लिए पर्यवेक्षक नियुक्त किए हैं और उन्हें प्रदेश में भेज भी दिया गया है। हिमाचल प्रदेश में राज्य इकाई के अध्यक्ष कुलदीप सिंह राठौर को दिल्ली तलब किया गया है। वह राहुल गांधी और अहमद पटेल के साथ मिलकर पार्टी और उसकी नीतियों में जरूरी बदलाव को लेकर चर्चा करेंगे। कुछ पदाधिकारी भी बदले जा सकते हैं। हरियाणा के प्रभारी कांग्रेस महासचिव गुलाम नबी आजाद और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के पार्टी नेता भी राहुल गांधी से मुलाकातें कर रहे हैं ताकि भविष्य की रणनीतियां तैयार की जा सकें।

आपका पक्ष

जी20 शिखर बैठक में जलवायु पर चिंता

जी20 शिखर सम्मेलन में जलवायु संकट पर दो दिन तक चर्चा चली। अमेरिका अपने रुख पर कायम है और उसने पेरिस जलवायु समझौते से खुद को दूर रखा है। लेकिन अन्य 19 सदस्य देशों ने पेरिस समझौते पर बिना किसी बदलाव के पूर्ण क्रियान्वयन पर सहमति जताई है। पेरिस जलवायु समझौते में ऐसे कई मुद्दे हैं जिन पर दुनियाभर के देशों को गंभीरता से काम लेना होगा क्योंकि पर्यावरण समस्या की कोई राजनीतिक सीमा नहीं होती है। चीन सबसे ज्यादा कार्बन उत्सर्जन करता है और इसका नुकसान उसके पड़ोसी देशों को भी होता है। इसलिए पेरिस समझौते पर दुनिया के सभी देशों को अपनी सहमति जतानी चाहिए जिससे धरती को बचाया जा सके। अगर सभी देश हाथ बढ़ाएंगे तो पर्यावरण ठीक होगा वरना धरती पर जीवन नहीं बचेगा। जलवायु परिवर्तन जनित समस्या से अमेरिका वाकिफ है लेकिन इस समझौते के प्रति अमेरिका की उदासीनता दुर्भाग्यपूर्ण है। अमेरिका के राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप शुरू से ही पेरिस समझौते के आलोचक रहे हैं तथा 2017 में उन्होंने इस समझौते को मानने से इनकार कर दिया था। अमेरिका चीन के बाद ऐसा दूसरा देश है जो सबसे ज्यादा कार्बन उत्सर्जन करता है। अमेरिका के कई राज्य वायु प्रदूषण से ग्रसित है लेकिन आज भी अमेरिका अपना ही फायदा देखता है। उसके इस रुख से दुनिया के देशों को गलत संदेश जाता है। इस वजह से कई देश इस समझौते की शर्तें मानने से इनकार कर सकते हैं क्योंकि इस समझौते पर 196 देशों ने दस्तखत किए थे। फिलहाल जी20 में पेरिस समझौते पर अमेरिका अलग-थलग पड़ गया है। जर्मनी, चीन, जापान समेत अन्य देश इसे लागू करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। भारत पहले से ही पेरिस समझौते का समर्थक रहा है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी अंतरराष्ट्रीय मंच पर पर्यावरण के प्रति संवेदना प्रकट करते हैं लेकिन भारत को भी पेरिस समझौते के नियमों को देश में प्रतिबद्धता से लागू करना जरूरी है। हमारा देश कई पर्यावरणीय समस्याओं से ग्रसित है। बहरहाल दुनिया के शक्तिशाली देश जलवायु परिवर्तन के प्रति संवेदना दिखा रहे हैं। यह सराहनीय एवं स्वागतयोग्य कदम है।

निशांत महेश त्रिपाठी, नागपुर

जापान के ओसाका में जी20 की बैठक में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भी शिरकत की *-पीटीआई*

बारिश का कहर, कई लोगों की मौत

हाल में पुणे में भारी बारिश के कारण एक सोसाइटी की दीवार ढहने से 17 लोगों की मौत हो गई तथा कई घायल हो गए। खबर के मुताबिक दीवार के पास मजदूर झोपड़ी बना कर रह रहे थे। दीवार उन झोपड़ियों के ऊपर गिर पड़ी जिससे कई मजदूर दब गए। इससे पहले गाजियाबाद की एक सोसाइटी में बारिश के बाद जमीन धंसने की खबर आई थी। इस घटना में जानमाल का नुकसान तो नहीं हुआ लेकिन सोसाइटी में बने प्लैट में दरार आ गई थी जिसे फौरन खाली कराया गया था। ग्रेटर नोएडा वेस्ट के शाहबेरी में भी मकान ढहने से कुछ लोगों की मौत हो गई थी। बारिश के बाद जमीन धंसने तथा दीवार ढहने की खबरें आती रहती हैं जिससे जानमाल का नुकसान होता है। सरकार को ऐसे निर्माण की जांच करनी चाहिए तथा उसकी सुरक्षा सुनिश्चित करनी चाहिए।

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।